हिन्दी समीक्षा और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

डॉ.अजय कुमार श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर
राजकीय शिक्षा कॉलेज ,चंडीगढ़ ।

सार :- भारतीय साहित्य में समीक्षा का शुभारम्भ संस्कृत साहित्य से माना जाता है । भामह के अलंकार संप्रदाय से लेकर रस संप्रदाय तक किसी न किसी रूप में समीक्षा अपने निर्धारित रूप में मजबूती के साथ आगे बढ़ती रही जिसका मुख्य विषय आचार्यत्व की पदवी से विभूषित हो कर रस को केन्द्र में रखते हुए अपने साहित्य.को समीक्षा की कसौटी को अन्य सम्प्रदायों के साथ रख कर अपने को ऊँचा दिखलाना प्रमुख रहा । कालांतर में यह हिंदी साहित्य में भी भक्ति काल के साथ चलती रही और रीति काल के साथ आधुनिक काल में अपने वैभव को प्रकाशित करती रही और पाश्चात्य जगत के प्रभाव में आकर व्यावहारिक समीक्षा के रूप में परिवर्तित करने में सफल रही ।आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चंद्र से लेकर आचार्य राम चंद्र शुक्ल तक समीक्षा का मूल पक्ष लोक मंगल की कसौटी पर खरा उतरना प्रमुख था ,परन्तु यह साहित्य और साहित्यकारों के व्यक्तिगत विचारों की अवमानना थी जिसे आगे के आचार्यों ने जिसमें आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ,आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ,डाक्टर नागेंद्र ,डॉ .राम विलाश शर्मा तथा डॉ.नामवर सिंह ने समीक्षा में कृति और कृतिकार के नजरिये को प्रमुखता देते हुए समीक्षा को नयी ऊंचाइयों पर पंहुचा दिया ।
प्रमुख शब्द :- समीक्षा ,साहित्य ,साहित्यकार ,नजरिया ,आचार्य राम चंद्र शुक्ल ,डॉ.नामवर सिंह ,व्यावहारिक आदि ।

भारतीय साहित्य के विकसित होने के साथ उसके प्रतिमान भी बनते गये। साहित्यिक नवीनता ने पुरातन को निचोड़ कर उसके सार तत्व से अपने को स्थापित किया और वही क्रिया उसके बाद जाने वाली नवीनता ने भी अपने पूर्ववर्ती क्रियाओं को सफलतापूर्वक ग्रहण किया। हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में ही उसके कुछ प्रतिमान हो गये जिन पर विशेष रूप से संस्कृत ग्रन्थों की ही समीक्षा पद्धति का पूरा प्रभाव दिखलाई पड़ता है। भक्ति साहित्य का उन्मेष हिन्दी भाषा के माध्यम से हिन्दी प्रान्तों में हुआ तथा सम्पूर्ण मध्य युग भाषा तथा भाव के माध्यम से समृद्ध हो गया। साहित्य के सृजन में लोकमांगलिक दृष्टिकोण का समर्थन भारतीय मनीषियों की अपनी पहचान है। यही बात मध्य युग के साहित्य पर भी लागू होती है। डॉ0 नगेन्द्र ने हिन्दी समीक्षा का प्रारम्भ मध्य युग से ही माना है। उनका कहना है-- प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में समीक्षा का विकास आधुनिक युग में ही हुआ है। परन्तु उसकी परम्परा का आरम्भ मध्य युग में हो जाता है।1 हमारे यहाँ साहित्य सृजन के साथ-साथ उसके अंगों उपांगों की सम्यक् व्याख्या वा टीका, गुणदोष परीक्षण संस्कृत के आचार्यों के समय से ही चला जा रहा था।

निश्चित तौर पर यह परम्परा विरासत के रूप में हिन्दी को भी प्राप्त हुयी।
मध्यकाल में समीक्षा के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों रूप दिखलाई पड़ते हैं परन्तु यह परम्परा अत्यधिक सुव्यवस्थित एवं संगठित नहीं है। डॉ0 नगेन्द्र मध्यकालीन समीक्षा में सैद्धान्तिक समीक्षा के अन्तर्गत तीन प्रकार की प्रवृत्ति उपलब्ध मानते हैं-- **(1)** संस्कृत काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों का अनुवाद, **(2)** संस्कृत काव्यशास्त्र का रूपान्तरण, **(3)** भक्तिमूलक रक्षशास्त्र का विवेचन।2

संस्कृत साहित्य में मध्य युग के समय काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का अनूदित रूप बहुत कम दिखलाई पड़ता है, प्रत्युत संस्कृत ग्रन्थों का ही निर्माण हुआ। यही बात हिन्दी साहित्य में भी दिखलाई पड़ती है। जहाँ भक्ति काल में अन्य भारतीय साहित्यों की अपेक्षा अधिक कार्य हुआ और उसके बाद **1600-1700** वि0 के मध्य सम्पूर्ण रीति काल में और उसके उपरान्त भी लगभग **250** वर्षों तक काव्य शास्त्र की धारा अबाध वेग से बहती रही। समूचे मध्यकाल में जिसमें भक्तिकाल तथा रीतिकाल दोनों का समावेश हो जाता है। इस **400** वर्षों के अन्तराल में भक्ति काल की उच्चतम रचनाएँ तथा रीति काल की आचार्यत्व सम्बन्धी रचनाओं की या तो टीका की गयी अथवा उस पर अलोचनाएं प्रस्तुत की गयी। इन कवियों ने काव्य प्रकाश, साहित्यदर्पण, रसमंजरी, चंद्रालोक , कुवलया नन्द का आश्रय लेते हुए संस्कृत काव्य शास्त्र के मान्य सिद्धान्तों- नियमों तथा काव्यांगों का हिन्दी में विस्तार के साथ विवेचन किया । संस्कृत काव्यशास्त्र के चार सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं --
(1) भामह उद्भट आदि का अलंकार सम्प्रदाय, **(2)** कुंतक का बक्रोक्ति सम्प्रदाय, **(3)** वामन का रीति सम्प्रदाय, **(4)** आनन्दवर्धन का ध्वनि सम्प्रदाय। रीतिकाल में हिन्दी का जो काव्यशास्त्र रचा गया वह इन्हीं सम्प्रदायों की नकल पर आधारित है।3 जो भी ग्रन्थ इस समय लिखे गए उनमें रस निरूपक, नायक नायिका भेद, अलंकार निरूपण, कवि शिक्षा तथा सर्वांग निरूपक प्रमुख हैं। आचार्यत्व एवं कवित्व दोनों के निर्वाह से ये कवि एक होना चाहते थे जिसका परिणाम यह हुआ कि वह दोनों ही खो बैठे न तो अच्छे कवि ही बन पाए और न ही अच्छे आचार्य बन पाए। आचार्य शुक्ल जी के विचार से इस एकीकरण का प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा। आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन एवं पर्यालोचन शक्ति की अपेक्षा होती है उसका विकास नहीं हुआ। कवि लोक दोहे में अपर्याप्त लक्षण देकरअपने कवि कर्म में प्रवृत्त हो जाते थे। काव्यांगों का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा खंडन-मंडन नए-नए सिद्धान्तों का प्रतिपादन आदि भी न हुआ।4 सूरदास कृत साहित्य लहरी, नन्ददास कृत रसमंजरी, राधावल्लभ सम्प्रदाय के मधुरोपासक कवियों की वाणियाँ तथा व्यास वाणी, ध्रुवदास जी की वयालीस लीला, नेही नागरीदास रचित-सिद्धान्त दोहावली आदि के द्वारा सिद्धान्त और व्यवहार दोनों रूपों में भक्ति की प्रतिष्ठा हुई। इनका मूलाधार बहुत कुछ उज्जवल नीलमणि और भक्ति रसामृत सिन्धु है जिनकी भाषा संस्कृत है फिर भी इनके द्वारा नवीन भक्ति रस को आधार प्रदान किया गया तथा समग्र भक्ति साहित्य इन्हीं के द्वारा समृद्ध एवं पुष्कल हुआ। अतएव जनमानस उस समय भक्तिरस से भर गया। इसका अपने पूर्ववर्ती संस्कृत ग्रन्थों से तथा प्राकृत और अपभ्रंश के ग्रन्थों से बहुत

कुछ अंगीकार किया गया। मध्ययुग में माधुर्य भाव से ओत-प्रोत भक्ति काव्य की जो रस धारा भारतीय भाषाओं में प्रवाहित हुई उसके फलस्वरूप भारतीय कव्यशात्र में ध्वनि के स्थान पर रससिद्धान्त का एकछत्र साम्राज्य स्थापित हो गया। भारतीय वाड्मय में रसध्वनि का आवरण हटाकर शुद्ध रस की प्रतिष्ठा करने का श्रेय इन भक्त कवियों को ही है। **14**वी से **18**वीं शती में उत्तर दक्षिण, पूर्व पश्चिम में सर्वत्र ही मधुराभक्ति की धारा ऐसे उद्दाम वेग से प्रवाहित हुई। हृदय रस और काव्य में स्थित व्यंजना का झीना आवरण छिन्न-भिन्न होकर बह गया।5 इसका ही प्रभाव था कि रीतिकालीन कवियों तथा आचार्यों ने अधिकांशत: सिद्धान्त एवं व्यवहार दोनों के द्वारा रसवाद का प्रबल समर्थन किया और उन्हीं के प्रयत्न का यह परिणाम है कि भारतीय काव्यशास्त्र में शृंगारवाद की नये रूपो में प्रतिष्ठा हुई जिसके बीज आधुनिक काल में भी दिखलाई पड़ जाते हैं।

हिन्दी साहित्य में समीक्षा का सही रूप **19**वीं शताब्दी **(**आधुनिक काल**)** में प्रारम्भ होता है। आधुनिक भारत तथा आधुनिक भारतीय संस्कृति तथा साहित्य के आविर्भाव का भी यही समय है। इसी युग में ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद ऐसी परिस्थितियों का जन्म हुआ जिसमें न केवल साहित्य सर्जना की बात कही गयी वरन् उस पर अपना दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया गया। पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति के साथ सम्पर्क एवं संघर्ष के फलस्वरूप वैज्ञानिक चिन्तन का भी उदय हुआ जिसके द्वारा भारतीय मनीषा ने अतीत एवं वर्तमान का ऐतिहासिक पर्यवेक्षण आरम्भ किया और इस प्रकार सम्पूर्ण देश में एक नवीन सांस्कृतिक जागरण की चेतना व्याप्त हो गयी। मुद्रण कला के आयात एवं विकास से नवीन ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-प्रसार बड़ी तेजी से हुआ जिसके लिए गदय एक आवश्यक विधा के रूप में अपनाया जाने लगा। ईसाई मिशनरियों ने धर्म के प्रचार के लिए और ब्रिटिश शासन वर्ग ने अपने तन्त्र को दृढ़तर बनाने के लिए शिक्षा का पुनर्गठन किया। अंग्रेजी ज्ञान-विज्ञान से युक्त पाठ्यक्रम बनाए गये और प्रबुद्ध भारतीय अंग्रेजी साहित्य के अतिरिक्त उसकी समीक्षा से भी परिचित हुआ। उत्तर मध्य युग में भारतीय साहित्य का जीवन के साथ जो सम्बन्ध टूट गया था वह फिर से जुड़ गया। ये सभी परिस्थितियाँ ऐसी थीं जिनसे समीक्षात्म दृष्टि का उदय हुआ और भारतीय भाषाओं में समीक्षा साहित्य की रचना के लिए प्रेरणा मिली। यहीं से समीक्षा का वास्तविक श्री गणेश होता है जिसका प्रारम्भिक रूप कुछ पिछले स्तर का है। फिर भी समीक्षा के लिए यह एक सशक्त एवं सक्रिय प्रयास कहा जा सकता है। आरम्भिक समीक्षा के विविध रूपों को निम्नलिखित रूप में विभाजित किया है --

(1) नव प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में नवीन विधाओं एवं तात्कालिक साहित्य प्रवृतियों पर टिप्पणियाँ।
(2) सम सामयिक प्रकाशनों की समीक्षा।
(3) प्राचीनकाल जयी ग्रन्थों का विवेचन।
(4) सिद्धान्त कथन-- पाश्चात्य सिद्धान्तों का आयात, संस्कृत काव्य-सिद्धान्तों का उद्धरण।

(5) सांस्कृतिक **(** धार्मिक सामाजिक**)** विषयों पर टिप्पणियां और साहित्य के साथ सामयिक परिवेश के सम्बन्ध का संकेत । 6

पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क से हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल प्रभावित हुआ और इस दिशा में भारतेन्दु जी तथा उनके मंडल के लेखकों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इन लेखकों ने सर्वप्रथम अपने साहित्य को कूपमंदूकता से निकाल कर अपने अतीत के गौरवशाली स्तम्भों से न केवल परिचय करवाया अपितु पाश्चात्य की तुलनात्मक समीक्षा से अपने को मानसिक रूप से ऊँचे उठने को भी तैयार किया। उन्होंने हिन्दी साहित्य को एक नये मार्ग पर खड़ा किया। वे साहित्य के नये युग प्रवर्तक हुए। यद्यपि देश में नये नये विचारों एवं भावनाओं का संचार हो गया था पर हिन्दी उनसे दूर थी। लोगों की अभिरुचि बदल चली थी पर हमारे साहित्य पर उसका कोई प्रभाव नहीं दिखलाई पड़ता।7 भारतेन्दु का पूर्ववर्ती काल साहित्य सन्तों की कुटियों से निकलकर राजाओं और रक्षों के दरबार में पहुँच गया था। उन्होंने एक तरफ तो काव्य को फिर से भक्ति की पवित्र मंदाकिनी में स्नान कराया और दूसरी तरफ उसे दरबारीपन से निकाल कर लोकजीवन के आमने सामने खड़ा कर दिया।8 भारतेन्दु जी ने कवि वचन सुषा, हरिश्चन्द्र मैगजीन, के माध्यम से समीक्षा जगत का न केवल शुभारम्भ किया वरन् प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी, प्रेमघन तथा लाला श्रीनिवास दास आदि के माध्यम से अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन करवाकर हिन्दी साहित्य में क्रान्ति कर दिया। इन पत्रिकाओं से न केवल हिन्दी वरन् देश में भी नव चेतना का विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत की सभी भाषाओं में ऐसी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई जो नवीन साहित्यिक विधाओं के प्रसार में थीं। सर्जनात्मक कृतियों के साथ-साथ इनमें समीक्षात्मक लेख और टिप्पणियाँ भी रहती थीं जिसमें आधुनिक भारतीय समीक्षा का आविर्भाव हो रहा था। आनन्द कादम्बिनी, ब्राह्मण, हिन्दी प्रदीप, विधा विलासिनी, विद्या विनोदिनी, चिन्तामणि, सरस्वती आदि के माध्यम से यह कार्य और भी द्रुतगति से होने लगा। प्रथम चरण की में नवीनता तथा पाश्चात्य के बिना रही किन्तु भारतीय परम्परा के प्रति निष्ठा की भावना उससे भी अधिक बलवती रही। इस काल के समीक्षकों का दृष्टिकोण राष्ट्रीय नैतिक चेतना से प्रभावित था। साहित्य की युग जीवन के साथ सम्बद्ध कर देखने परखने की प्रवृत्ति युग में उभर रही थी। पाश्चात्य साहित्य के सिद्धान्तों एवं प्रतिमानों का आयात हो रहा था और उनका उपयोग प्राचीन भारतीय वाङ्मय एवं मूल्यांकन के लिए किया जा रहा था।9

बीसवीं सदी के प्रथम चरण को हम हिन्दी समीक्षा का विकास काल मान सकते हैं। प्राचीन और नवीन, भारतीय तथा पाश्चात्य तत्वों के संयुग्मन से जिस समीक्षा पद्धति का जन्म हुआ था अब वह निश्चित रूप से विकसित होकर एक निश्चित आयाम में गठित हो गयी थी। बीसवीं सदी का प्रारम्भ तथा सरस्वती का आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के हाथ में जाना हिन्दी साहित्य के बुनियादी कलेवर में महान परिवर्तन का आरंभ है। सर्वप्रथम गद्य-पद्य की समस्याओं का समाधान

करते हुए आचार्य जी ने हिन्दी समीक्षा तथा साहित्य को एक व्यापक और मजबूत आधार पर आरूढ़ करने को विवश कर दिया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी चूँकि भारतीय संस्कृति के अनन्य पोषक थे इसलिए उन्होंने समीक्षा को भी इसी आधार पर निर्धारित किया। जो उनके साहित्य में विद्यमान है। महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसी इतिवृत प्रधान-कविता के पुरस्कर्ता हैं वैसे ही इतिवृत परक आलोचना के भी।10 इस समय प्रमुख लेखकों में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अलावा मिश्रबन्धु, पद्मसिंह शर्मा, लालाभगवानदीन, रामनारायण पाठक, केशवराय मुदालियर, चन्द्रधर शर्मा, बालमुकुन्द गुप्त तथा आचार्य शुक्ल प्रमुख थे। ये सभी विद्वान अपने-अपने क्षेत्र के मूर्धन्य आलोचक थे। इनके दृष्टिकोण का निर्माण भारतीय और पाश्चात्य साहित्य सिद्धान्तों के समन्वय से हुआ था। सत्य यह है कि भारत के साहित्यिक परिवेश के अनुरूप पौरत्स्य तथा पाश्चात्य साहित्य सिद्धान्तों का समन्वय कर इस युगदृष्टा आलोचक ने आधुनिक भारतीय समीक्षा का रूप निर्माण किया। और उसे मौलिक भूमिका पर प्रतिष्ठित किया।11 प्राय: सभी विद्वान अन्तत: रस-सिद्धान्त से जुड़े रहे तथा उन्होने अपने सिद्धान्तों का विवेचन करने के पश्चात व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। निष्कर्षत: गम्भीर शास्त्र ज्ञान, प्रौढ़ चिंतन, स्वस्थ विवेक और मौलिक प्रतिपादन शैली से परिपुष्ट इन आलोचकों के गौरव ग्रन्थ से सम्बल प्राप्त कर भारतीय समीक्षा ने सुवर्ण युग में प्रवेश किया।12

भारतीय समीक्षा का अग्रिम चरण गुण एवं परिमाण दोनों की दृष्टि से अधिक उर्वर है। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में नवीन प्रभावों एवं प्रेरणाओं के फलस्वरूप एक तरफ तो शास्त्रीय समीक्षा के प्रति असन्तोष की भावना जागृत हुई दूसरी तरफ शास्त्रीय समीक्षा के आधार पर कुछ नया कर दिखाने की चाह भी आवेग के साथ उत्पन्न हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि इससे साहित्य चिन्तन की नवीन प्रवृतियों का उद्घाटन हुआ और उसमें पहली बार मानव सम्बन्धों को अधिक से अधिक विस्तार देने का कार्य किया गया। इसके प्रबल पक्षधर आचार्य शुक्ल थे यदयपि आचार्य शुक्ल मूलरूप से रसवादी समीक्षक हैं और इनका यह रूप इनके साहित्येतिहास तथा समीक्षा के अन्य ग्रन्थों में स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। वे कल्पना और भावुकता को कवि का आवश्यक गुण मानते हैं। उनके विचार से सच्चा कवि (समीक्षक) वही है जिसे लोक- हृदय की पहचान हो। जो उनकी विचित्रताओं और विशेषताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके। इसी लोक हृदय में लीन होने की दशा रस दशा है। जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था है - रस दशा। इसकी साधना के लिए किया गया शब्द विधान कविता है। 13 आचार्य शुक्ल कवि तथा समीक्षक दोनों से लोकमंगल की अपेक्षा करते हैं। वह साहित्य का मानदण्ड लोक मंगल मानते हैं तथा इस लोक मंगल की आत्मा को वह रस से जोड़ते। यही कारण है कि उनकी समीक्षा कहीं-कहीं असन्तुलित तथा एक पक्षीय हो गयी है। कम से कम सूर और तुलसी के विषय में यह बात दिखलाई पड़ती है। आचार्य रामचन्द्र

CGCTA

शुक्ल ने रस एवं अलंकार शास्त्र को नवीन मनोवैज्ञानिक दीप्ति दी और उन्हें ऊँची मानसिक भूमि पर प्रतिष्ठित किया। उनके प्रयास से रस और अलंकार हिन्दी समीक्षा से बहिष्कृत हो जाने से बच गये। शुक्ल जी ने समीक्षा के भारतीय साँचे को बना रहने दिया। उन्होंने इस साँचे के लिए यह दावा भी किया कि भविष्य में हिन्दी समीक्षा का निर्माण इसी आधार पर होना चाहिए।14 आचार्य शुक्ल ने चिन्तामणि भाग-**1** व **2**, हिन्दी साहित्य का इतिहास, रसमीमांसा, नामक प्रमुख समीक्षात्मक ग्रन्थ लिखकर उसमें अपनी समीक्षा पद्धति को प्रकट किया। वह व्यावहारिक समीक्षा में तुलसी, सूर, जायसी आदि कवियों पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए उनके मूल में लोक की चेतना, लोक के स्पंदन को प्रमुखता देते हैं। इसलिए वह अपने निबन्धों में मनुष्य के छोटे-छोटे भावों एवं विकारों को बड़ी गहराई से प्रस्तुत करते हैं। साहित्य में पिरोये गये भावों को मानव जीवन के भावों से ऐक्य करने के पक्षपाती है तथा वह साहित्य हृदय की लोक हृदय बनाना चाहते हैं। डॉ**0** रामविलास शर्मा के विचार से लोक हृदय में लीन होने की कसौटी रखकर उन्होंने हर तरह की संकुचित व्यक्तिवादी और भाववादी धारणाओं से साहित्य को मुक्त करके उसे सामाजिक जीवन का एक क बना दिया। इसलिए लोक-हृदय, लोक मंगल या लोक हित को दरकिनार करके साहित्यकार आगे नहीं बढ़ सकता। वह किसी भी तरह के भाव प्रकट करके किसी भी तरह रस निष्पत्ति करके अपना पीछा नहीं छुड़ा सकता।15

आचार्य शुक्ल ने अपने को भारतीय समीक्षा पद्धति के साथ-साथ पाश्चात्य समीक्षा के अनुरूप भी ढाला तथा अपनी शास्त्रीय समीक्षा पद्धति को नष्ट होने से बचा लिया। वह किसी मी कृति की आत्मा में पैठकर उसे मुख्यतया जनमानस के धड़कनों से, आत्मा की आवाज से जोड़ते थे। अतीत की सुमधुर स्निग्धता के पीछे वह यह कदापि नहीं मूलते थे कि समीक्षा मनुष्य के लिए होती है मनुष्य समीक्षा के लिए नहीं। यही कारण है कि उन्होंने भावों की ऊँचाई तथा जीवन के सारत्य को अपने और अपने परिवेश से हमेशा जोड़े रखा। उन्होंने भारतीय साहित्य के ऊँचे या महान कवियों को अलंकार और रस पद्धति से उसका मूल्यांकन किया।

आचार्य शुक्ल जी अपने समीक्षात्मक लेखों में भाव-लोक की चर्चा करते हैं तथा इस भाव लोक को लोक चेतना में ही सम्पृक्त करते हैं। आचार्य शुक्ल अपनी समीक्षा में लोकहित के माध्यम से आम जनता की या जनता की चितवृत्ति की ही बात करते हैं।16

आचार्य शुक्ल का कार्य समीक्षा के दोनों क्षेत्रों में समान रूप से रहा वह व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक समीक्षा दोनों में अपना संतुलन बनाए रहें। आचार्य शुक्ल ने समीक्षा के क्षेत्र में जो प्रतिमान निर्धारित किए है। उसको स्वीकार लिए बिना किसी भी साहित्य की परख सम्भव नहीं है। वे ठोस भूमि पर मजबूती से जमाकर जीवन एवं साहित्य पर दृष्टि डालते हैं और उसकी व्याख्या करते हैं। रूढ़िवादी धार्मिकता, पारलौकिकता एवं रहस्यवादिता, वैज्ञानिकता और लौकिकता का विरोध करती है। इसीलिए शुक्ल जी को जीवन और साहित्य की व्याख्या के दौरान उनका विरोध करना आवश्यक था। व्यक्ति धर्म के स्थान पर उन्होंने लोक को श्रेयस्कर

बताया। उन्होंने साहित्य में जीवन और जीवन में साहित्य की प्रतिष्ठित किया।17 आचार्य शुक्ल का अवतरण हिन्दी में उस समय हुआ जब हिन्दी में समीक्षा का कोई भी ठोस मानदण्ड निर्धारित नहीं किया गया था। उन्हें विरासत से संस्कृत समीक्षा पद्धति के अतिरिक्त हिन्दी का कुछ भी नहीं मिला था। उस समय समीक्षा कार्य बड़ा ही दुष्कर था। उन्होंने दोनों तरफ अपने डगों को उचित अनुपात में बढ़ाया। उनके सामने पाश्चात्य समीक्षा की चुनौती भी थी तो दूसरी ओर भारतीय समीक्षा (हिन्दी समीक्षा) को आधार भी प्रदान करना था। वह इन दोनों दायित्वों को बहुत ही खूबी से निभा गये। उनका समीक्षा में योगदान सदैव अविस्मरणीय रहेगा। शुक्ल जी की समीक्षा पद्धति प्राय: सभी गुणों से मंडित है किन्तु एक विशेषता उन्हें अन्य भारतीय समीक्षकों से पृथक् करती है और वह यह कि उनकी सिद्धान्त संहिता का विकास अनुगमन पद्धति से हुआ था। रामचरितमानस, पद्मावत, सूरसागर आदि कालजयी काव्यों की व्यावहारिक आलोचना में से उनका आविर्भाव हुआ था। शास्त्र चिन्तन भारतीय पाश्चात्य साहित्य सिद्धान्तों से उसका पोषक हुआ था निर्माण नहीं, इस दृष्टि से उनकी समीक्षा अपेक्षाकृत अधिक मौलिक थी। अमर काव्यों के अत्यन्त मर्मग्राही सूक्ष्म गहन तथा प्रौढ़ विवेचन विश्लेषण से उद्भूत उनके साहित्य सिद्धान्त किसी शास्त्रीय परम्परा के साथ पूर्णत: प्रतिबद्ध नहीं थे। व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में उनका योगदान अपूर्व था जिसके आधार पर वे आज भी भारतीय उन्नायकों में मूर्धन्य पद पर प्रतिष्ठित हैं।18

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. डॉ. नगेन्द्र : भारतीय समीक्षा और आचार्य शुक्ल की काव्य दृष्टि, पृष्ठ **30**
2. वही : ,, ,, पृष्ठ **31**
3. डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी: हिन्दी आलोचना, पृष्ठ **15**
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ **234**
5. डॉ. नगेन्द्र: भारतीय समीक्षा और आचार्य शुक्ल की काव्य दृष्टि, पृष्ठ **33**
6. डॉ. नगेन्द्र: भारतीय समीक्षा और आचार्य शुक्ल की काव्य दृष्टि, पृष्ठ **39**
7. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: चिन्तामणि, भाग **1**, पृष्ठ **191**
8. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी: हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, पृष्ठ **210**
9. डॉ. नगेन्द्र: भारतीय समीक्षा और आचार्य शुक्ल की काव्य दृष्टि, पृष्ठ **40**
10. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी: हिन्दी साहित्य एवं सवेदना का विकास, पृष्ठ **202**
11. डॉ. नगेन्द्र: भारतीय समीक्षा और आचार्य शुक्ल की काव्य दृष्टि, पृष्ठ **4२**
12. डॉ. नगेन्द्र: भारतीय समीक्षा और आचार्य शुक्ल की काव्य दृष्टि, पृष्ठ **4३**

CGCTA

13. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: चिन्तामणि भाग-एक, पृष्ठ **147**
14. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी: आधुनिक साहित्य, पृष्ठ **318**
16.. डॉ. रामबिलास शर्मा: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, पृष्ठ **5**
17. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ **1**
18. डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी: हिन्दी आलोचना, पृष्ठ **55**

CGCTA